ज्ञानविविधा
रचना, आलोचना और शोध की त्रैमासिक पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
July-September 2024 : 1(4)46-48
©2024 Gyanvividha
www.gyanvividha.com

गोवर्धन दास बिन्नानी "राजा बाबू"
बीकानेर / मुम्बई

Corresponding Author :

गोवर्धन दास बिन्नानी "राजा बाबू"
बीकानेर / मुम्बई

राष्ट्रधर्म व सनातन के लिये भामाशाहों का योगदान

वैदिक काल से लेकर आज तक हमारे सभी सन्त, ऋषि मुनि, शिक्षक , माता-पिता आशीर्वाद देने के साथ साथ अपने सारे कार्य जीवन पर्यन्त संयम और नैतिकता अपनाते हुये करते रहने की सलाह देते हैं क्योंकि संयम और नैतिकता के बूते जीवन सुखमय तो होता ही है साथ साथ सम्मानजनक भी। जैसा आप सभी जानते हैं कि विलासिता से अनेक अवगुण स्वत: ही अपने आप विकसित हो जाते हैं और इनसे बचने के लिये संयम ही एक कारगर हथियार है। लेकिन हमें सुख जितना पसन्द है उतना संयम नहीं क्योंकि संयम के चलते हमें अपने व्यवहार पर नियंत्रण, वाणी पर नियंत्रण, इच्छाओं पर नियंत्रण अर्थात क्रोध, लालच, द्वेष, मोह, अभिमान आदि मन की अवांछित भावनाओं पर नियंत्रण के लिये प्रयासरत रहना होगा। यदि ऊपर वर्णित में से हम किसी एक को अपनाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ होते हैं तो बाकी सब भी हमारे में स्वत: विकसित होने लगेंगे क्योंकि संतुलित अवस्था में रहने से संयम की पालना शुरू हो जाती है। इसलिये ही बताया गया है कि मन का संतुलित अवस्था में रहना ही संयम है।

उपरोक्त तथ्यों से यह माना जा सकता है कि संयम से हमारी सोच सकारात्मक होगी ही। फलस्वरूप हमारे में बल व बुद्धि की वृद्धि होगी क्योंकि जब हम प्रसन्नचित्त रहते हैं तो हमें अपने आप अंदरुनी ताकत मिलती है। यह तो ज्ञात हो गया है कि संयम से अपार खुशियाँ व सुख सुलभ होता है लेकिन अब सवाल यह है कि संयम कैसे विकसित करें ? इसलिए सबसे पहले यह समझ लें कि इन्द्रिय संयम से ब्रह्मचर्य विकसित होगा, वहीं वाणी के संयम से विद्वता झलकेगी और मन का संयम दोनों में सामंजस्य बैठाने में सहायक होगा। परन्तु जीवन सब तरह से सुखमय तो तभी होगा, जब हम नैतिक शिक्षा अनुसार आचरण करेंगे। इसलिये नैतिक मूल्यों को ध्यान में रख हमें अपने आचरण में संयम बरतते हुए जीवन जीना होगा।

ध्यानार्थ कि, नैतिकता का प्रथम उद्देश्य अपने निजी हित के स्थान पर समाज के कल्याण को अधिक महत्व देना माना गया है। इसलिए संयम और नैतिकता के चलते मनुष्य के स्वाभाविक विकार दूर होते हैं। इसके चलते मनुष्य क्षीर, गम्भीर बनता है और निर्णय लेने में गलती की सम्भावना बहुत ही कम होती है बल्कि हम कह सकते हैं कि गलती हो पाना मुमकिन ही नहीं है।

ऊपर वर्णित से यह स्पष्ट है कि जबसे हम अपने निजी हित के स्थान पर समाज के कल्याण को अधिक महत्व देना शुरू कर देंगे तब

हम जीवन में सादगी, संयम, अनावश्यक खर्चों पर नियंत्रण कर पाने में सफल हो सकेंगे।जिसके फलस्वरूप हम सद्कार्य के लिये आवश्यकता के समय पर जो भी संभव हो, जितना भी संभव हो, दे पायेंगे। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये आप सभी प्रबुद्ध पाठकों के लिये कुछ निम्न ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत है -

1] राजस्थान राजपूतानी शौर्य भूमि बीकानेर के मूल निवासी वैश्य अमर चंद बांठिया जी की कीर्ति से प्रभावित होकर ग्वालियर की तत्कालीन सिंधिया रियासत के महाराज ने उनको राजकोष का कोषाध्यक्ष बनाया था। उस समय ग्वालियर के गंगाजली खजाना की जानकारी केवल चुनिन्दा लोगों को ही थी। बांठिया जी भी उनमें से एक थे। यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि उस समय के चलन के मुताबिक गंगाजली खजाना से कोई भी कुछ भी निकाल ही नहीं सकता था, फलस्वरूप खजाने की सदैव वृद्धि होती रही।

1857 का स्वातंत्र समर के समय झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई अपने योग्य सेनानायक राव साहब, तात्या टोपे और रानी बैजाबाई एवं अपने सैन्य बल के साथ अंग्रेजों से लोहा लेते हुये ग्वालियर को अपने अधिकार में ले, अंग्रेजों के सहयोगी शासक को वहां से हटने को विवश तो कर दिया था, किन्तु उनकी सेना को कई महीनों से न तो वेतन प्राप्त हुआ था और न हीं उनके भोजन आदि की समुचित व्यवस्था हो पा रही थी अर्थात अर्थाभाव के कारण स्वाधीनता समर दम तोड़ता दिखाई दे रहा था। इस स्थिति को समझते हुये बांठिया जी ने अपनी जान की परवाह न कर महारानी लक्ष्मीबाई को अपनी सारी जमा पूँजी तो समर्पित की ही साथ ही ग्वालियर का राजकोष भी उनके सुपुर्द कर दिया। यह धनराशि उन्होंने ८ जून १८५८ को उपलब्ध कराई। उनकी मदद के बल पर वीरांगना लक्ष्मीबाई दुश्मनों के छक्के छुड़ाने में सफल रहीं थी।

2] एक मराठा सैनिक आपा गंगाधर ने 800 साल पहले पुरानी दिल्ली के चाँदनी चौक क्षेत्र में प्रसिद्ध गौरी शंकर मंदिर निर्मित किया गया था। एक बार एक बड़े वैश्य व्यापारी लाला भागमल जी को पता चला कि क्रूर, निर्दयी औरंगजेब ने इस मंदिर को तोड़ने का आदेश अपने सिपाहियों को दिया है तो उन्होनें औरंगजेब से सीधा- सीधा पूछा : तुझे कितना जजिया कर चाहिए ??? कीमत बोलिये , लेकिन मन्दिर को कोई हाथ नही लगाएगा , मन्दिर की घण्टी बजनी बन्द नही होगी !!

कहते हैं इसके जबाब में उस वक़्त औरंगजेब ने औसत जजिया कर से 100 गुना ज्यादा जजिया कर , हर महीने माँगा था। और वैश्य व्यापारी लाला भागमल जी बिना माथे पर शिकन लाये हर महीने उतना जजिया कर औरंगजेब को दान के रूप में दिया था। इस तरह वैश्य व्यापारी लाला भागमल जी ने उन आततायी से मन्दिर को बचाया यानि मन्दिर को छूने तक नहीं दिया।इस घटना के कई दशक बाद इसी गौरी-शंकर मंदिर का जीर्णोद्धार सेठ जयपुरिया नाम के शिव भक्त ने 1959 में कराया था। इस तरह मराठा सैनिक आपा गंगाधर के समय से लेकर आज तक मन्दिर की घण्टियाँ ज्यों की त्यों बज रही हैं।

3] सरहिंद के नवाब वजीर खां ने गुरु गोबिंद सिंह जी के दो पुत्रों को दीवार में चिनवाने के बाद, उनके अर्थात दोनों साहिबजादों व दादी माँ, जो 6 पूस से 13 पूस… तदनुसार 21 दिसम्बर से 27 दिसम्बर सन 1705 वाले 7 दिनों में शहीद हुये, के पार्थिव शरीरों को अंतिम संस्कार के लिए जगह नहीं दे रहा था। तब वैश्य व्यापारी टोडरमलजी ने उन तीनों महान विभूतियों का अंतिम संस्कार के लिए सिर्फ 4 वर्ग मीटर स्थान 78000 हजार सोने के सिक्के, जमीन पर खड़े कर वह जगह मुगल सल्तनत से खरीद स्वयं ही उन तीनों महान विभूतियों का अंतिम संस्कार अपनी पत्नी के सहयोग से फतेहगढ़ साहिब में सम्पन्न किया था।

4] हल्दी घाटी के युद्ध में पराजित पराक्रमी महाराणा प्रताप जब अपने परिवार के साथ जंगलों में भटक रहे थे तब दानवीर वैश्य भामाशाह मातृ-भूमि की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप के लक्ष्य को सर्वोपरि मानते हुए अपनी सम्पूर्ण धन-संपदा अर्पित कर दी। जिसके चलते महाराणा प्रताप में नया उत्साह उत्पन्न हुआ और उन्होंने पुन: सैन्य शक्ति संगठित कर मुगल शासकों को पराजित कर फिर से मेवाड़ का राज्य प्राप्त कर लिया था।

महाराणा प्रताप जी भी जब महल छोड़कर जंगल चले गए थे, व उन्हें अकबर के विरुद्ध नई सेना का गठन करना था , उस समय भी बनिया समाज के श्री भामाशाह जी ने अकूत धनराशि से महाराणा प्रताप जी को भरपूर सहयोग किया था। ऐसे विरल दानवीर वैश्य भामाशाह के लिये ही निम्न पंक्तियाँ कही गयीं थी -

वह धन्य देश की माटी है, जिसमें भामा सा लाल पला।
उस दानवीर की यश गाथा को, मेट सका क्या काल भला ।।

5] इसी तरह सामान्य लेखक के रुप में अपना जीवन शुरू करने वाले वैश्य राजा टोडरमलजी (इनको 21 वर्ष की उम्र में बादशाह शाहजहाँ ने 'राजा' की उपाधि से नवाजा था) ने पंडित नारायण भट्ट की प्रेरणा से उत्तर प्रदेश के वाराणसी शहर स्थित भगवान शिवजी अर्थात काशी विश्वनाथ मंदिर, जिसे वर्ष 1447 में इसे जौनपुर के सुल्तान महमूद शाह ने तुड़वा दिया था, को 1585 में पुन:निर्माण करवा सनातन धर्म रक्षार्थ एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया ।

इसी क्रम में यह भी बताना चाहूँगा कि प्रायः प्रायः सभी तीर्थ स्थानों में आपको किसी भी वैश्य द्वारा स्थापित धर्मशाला मिलेगी ही । हाल ही के वर्षो में वैश्य समाज अस्पताल , विद्यालय, विश्वविद्यालय वगैरह भी छोटे से छोटे जगह पर स्थापित किये जा रहे हैं । इन सब कारणों से हम कह सकते हैं कि वैश्य समाज धर्म- कर्म , समाज कल्याण के साथ साथ राष्ट्र उन्नति के लिये कुछ भी करने को सदैव तत्पर रहते हैं क्योंकि उनके जिन्दगी जीने के मापदण्ड कुछ इस प्रकार होते हैं -

जिन्हें सेवा की धुन हो, कुछ अलग होते हैं दुनिया में ।
उन्हें तकलीफ पाकर भी, बहुत सुकून मिलता है ।।

सार यही है कि, संयम और नैतिकता के मिश्रण से नश्वर शरीर के मौज-मस्ती में फालतू खर्च न कर, मितव्ययिता बरत सेवा ,दान , उत्सव , देशहित में सदा अग्रणी भूमिका निभाने के साथ साथ क्षमा, आत्म-नियंत्रण, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रिय-संयम,बुद्धि, विद्या, सत्य, धैर्य, क्रोध न करना जैसे गुण स्वत: ही विकसित होंगे।अर्थात सब पर दया करना, कभी झूठ नहीं बोलना, बड़ों का आदर करना, दुर्बलों को तंग न करना, चोरी न करना, हत्या जैसा कार्य न करना, सच बोलना, सबको समान समझते हुए उनसे प्रेम करना, सबकी मदद करना, किसी की बुराई न करना आदि कार्य अपनाते हुए जब हम जीवन जीते हैं, तो समाज में सम्मान पाते हैं और परोक्ष रूप से हम जहाँ भी रहेंगे, हमेशा भारत का गौरव बढ़ाते ही रहेंगे।

……………………………………